International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(II), October - December, 2022, pp. 345-350

आलोचनात्मक यथार्थवाद

डॉ. पीयूष कुमार पारीक*

सार

"आलोचनात्मक यथार्थवाद'' का नामकरण मूलतः दो शब्दों के मिश्रण से हुआ है पहला आलोचनात्मक और दूसरा यथार्थवाद । साहित्य या आलोचना के क्षैत्र में मार्क्सवादी विचाराकों ने यथार्थवाद की एक विशिष्ट दृष्टि के रूप में इसकी चर्चा की है। संभवतया रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की ने 1934 में लेखकों की प्रथम कांग्रेस में इस शब्द का पहली बार प्रयोग किया था । वस्तुतः यह प्रकृतिवाद और स्वच्छंदतावाद से अलग एक दृष्टि है जो जीवन को उसकी समग्रता में भय एवं पक्षपात से रहित होकर पूरी वस्तुपरकता के साथ चित्रण करने की हिमायती है । हंगरी के आलोचक जॉर्ज लुकाच ने इसकी सैद्धान्तिकी का मॉडल तैयार किया है। अतः इसे लुकाच का महान यथार्थवाद भी कहा जाता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के उदय के पीछे जो महत्वपूर्ण कारण जिम्मेदार माने जाते हैं उनमें 1789 की फ्रांस की राज्य क्रांति, साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध, पूंजीपति वर्ग का समाज पर एकाधिकार, वैज्ञानिक नवीन खोजे, मध्य वर्ग का उदय तथा मार्क्सवाद का उत्थान आदि उल्लेखनीय घटनाएं है। आलोचनात्मक यथार्थवाद दृष्टि रखने वाले लेखकों में पुश्किन, वाल्टर स्काट, बालजाक और टालस्टाय के नाम ऐतिहासिक महत्व रखते हैं।

शब्दकोशः *आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, स्वच्छंदतावाद, मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद, अन्तर्विरोध।*

प्रस्तावना

आलोचनात्मक यथार्थवाद (Critical Realism) यथार्थवादी आंदोलन की सबसे पुरानी एवं आरंभिक प्रवृत्ति है तथा मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में 19वीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जहाँ तक इसके नामकरण एवं शाब्दिक अर्थ की बात है; प्रकृतिवाद और यथार्थवाद की तरह यह भी दर्शन शास्त्र का ही एक पद है। साहित्य एवं आलोचना के क्षेत्र में संभवतया मार्क्सवादी विचारकों ने ही यथार्थवाद की एक दृष्टि विशेष के लिए इसका प्रयोग किया है। जिन दो शब्दों के संयोग से इस संयुक्त पद का निर्माण हुआ है उनमें प्रथम है 'आलोचनात्मक' और दूसरा है 'यथार्थवाद' । आलोचनात्मकता यथार्थवाद की एक अनिवार्य प्रवृत्ति है, जबकि यथार्थवाद को यथार्थ–चित्रण की विशिष्ट दृष्टि एवं पद्धति दोनों के रूप में स्वीकार किया जाता है। अन्र्स्ट फिशर 'आलोचनात्मक' शब्द को एक रवैये के रूप में, तथा 'यथार्थवाद' को एक पद्धति के रूप में ग्रहण करते हैं।[i] वस्तुतः मैक्सिम गोर्की ने 1934 में सोवियत लेखकों की प्रथम कांग्रेस में यथार्थवाद के उस स्वरूप के लिये 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग किया जो 'प्रकृतिवाद' से भिन्न तथा 'समाजवादी दृष्टिकोण' से रहित था, इस नामकरण के पीछे उसकी मुख्य विशेषता 'आलोचनात्मकता' को आधार बनाया गया था। कुछ मार्क्सवादी आलोचकों ने इसके पूंजीवाद विरोधी रुख को केंद्र में मानते हुए इसे 'बुर्जुआ यथार्थवाद' की संज्ञा भी दी है, वहीं गोर्की इसे यदा–कदा 'क्रांतिकारी स्वच्छंदतावाद' भी कहते हैं। शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''दूसरे प्रकार के बुर्जुआ लेखक वे हैं, जिन्होंने अपने वर्ग–स्वार्थ तथा वर्ग–हितों का अतिक्रमण करते हुए अपने वर्ग की खरी आलोचना की है। ऐसे ही लेखकों को गोर्की ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तथा 'क्रांतिकारी स्वच्छंदतावाद' का सृष्टा कहा है, और उनकी असाधारण प्रतिभा को अपनी स्वीकृति दी है।''[ii] स्वयं शिवकुमार मिश्र इसे प्रकृतिवाद से भिन्न, जिंदगी को उसकी 'वस्तुपरकता' में देखने, समझने और परखने वाली यथार्थ–दृष्टि के रूप में संबोधित

* सह आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, टोंक, राजस्थान।

करते हैं। लुकाच द्वारा इसका सैद्धांतिक प्रतिमान विकसित किया गया है, अतएव इसे 'लुकाच का महान् यथार्थवाद' भी कहा जाता है। संक्षेप में 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' 19वीं सदी में प्रवर्तित यथार्थवादी आंदोलन की वह प्रवृत्ति है जो 'प्रकृतिवाद' से भिन्न तथा 'समाजवादी दृष्टिकोण' से रहित होकर जीवन की वास्तविकता का समग्र आलोचनात्मक विश्लेषण करती है। इसमें यथार्थ के प्रति लेखक के आलोचनात्मक रवैये का परीक्षण किया जाता है। जार्ज लुकाच इसके मुख्य सिद्धांतकार तथा वालजाक इसके साहित्य के प्रमुख पुरस्कर्ता हैं।

आलोचनात्मक यथार्थवाद के उदय की पृष्ठभूमि

आलोचनात्मक यथार्थवाद के उद्‌भव एवं विकास के पीछे जो कारण एवं परिस्थितियाँ उत्तरदायी मानी जाती है, उन्हें जानने के लिए हमें पुनः यथार्थवाद की ओर लौटना होगा। चूँकि आलोचनात्मक यथार्थवाद यथार्थवादी आंदोलन की सबसे पुरानी और प्रारंभिक प्रवृत्ति है, उसके पीछे भी वही कारण और परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं, जिनका संबंध यथार्थवाद के उदय से है। वैज्ञानिक आविष्कार, ईश्वर एवं धर्म की आलोचना, औद्योगिक क्रांति, पूँजीवाद का उदय, मध्यवर्ग का जन्म, उपन्यास का विकास, राजनैतिक क्रांतियाँ एवं परिवर्तन, मार्क्सवाद की लोकप्रियता तथा बुद्धिजीवियों में व्यवस्था के विरुद्ध असंतोष के ज्वालामुखी का विस्फोट ऐसे तात्कालिक कारण हैं, जिनकी वजह से 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में 1830 के बाद 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है। उक्त कारणों की ओर संकेत मात्र करते हुए कुछ अतिमहत्वपूर्ण तथा अपरिहार्य परिस्थितियों की ही चर्चा हम करेंगे जो इसके विकास और चरित्र को जानने के लिए जरूरी है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद के उदय की पृष्ठभूमि में जो सबसे बड़ा कारण नजर आता है, वह 1789 की फ्रांस की राज्य क्रांति से जुड़ा हुआ है। राज्य क्रांति ने पूरे विश्व में स्वतंत्रता–समानता–बंधुत्व के नारे की जो अनुगूंज उत्पन्न की, उसका साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध वातावरण बनाने में क्रांतिकारी योगदान रहा। फ्रांसीसी राज्य क्रांति के फलस्वरूप फ्रांस में सामंतवादी शासन व्यवस्था का पराभव हुआ, जिसका स्थान पूँजीवादी व्यवस्था ने लिया। हालांकि नयी पूंजीवादी व्यवस्था पूर्ववर्ती सामंती व्यवस्था की तुलना में काफी प्रगतिशील थी जिसका आरंभ में लेखकों–कलाकारों ने अपूर्व स्वागत किया, लेकिन कालांतर में बुर्जुआ वर्ग की आर्थिक उन्नति के साथ–साथ उसके अंतर्विरोधों तथा असंगतियों के उजागर होने से लेखकों–कलाकारों में घोर असंतोष भी छा गया। यह असंतोष 'बुर्जुआ यथार्थवाद' के उदय में सबसे उल्लेखनीय कारण माना जा सकता है। राज्य क्रांति, पूंजीवाद का उदय, उपन्यास का विकास मध्य वर्ग की उत्पत्ति आदि सभी कारण परस्पर सम्बद्धता लिए हुए है जिनकी यथार्थवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एंगेल्स ने पूंजीवाद से मोहभंग की घटना को विस्तार से लिखा है, जिसे यहाँ उद्‌धृत किया जाना आवश्यक है– ''जिस राज्य को 'विवेक' के आधार पर कायम किया गया था, वह बिलकुल ढह गया। रूसो के सामाजिक समझौते की परिणति आतंक राज्य में हुई और पूंजीपति वर्ग ने, जिसे अपनी राजनीतिक योग्यता में विश्वास न रह गया था, इस आतंक से बचने के लिए पहले तो 'डाइरेक्ट्रेट' के भ्रष्टाचार का सहारा लिया और फिर नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता की शरण ली।..... जोर, जुल्म, जबरदस्ती की जगह भ्रष्टाचार ने ले ली। बंधुत्व का क्रांतिकारी आदर्श होड़ के छल–कपट और ईर्ष्या–द्वेष के रूप में फलीभूत हुआ। खड्‌ग की जगह स्वर्ण समाज का प्रथम उत्तोलक बन गया। पहली रात बिताने का अधिकार सामंती प्रभुओं के हाथ से निकल कर पूंजीवादी कारखानेदारों के हाथ में आ गया। वेश्यावृत्ति अभूतपूर्व रूप से बढ़ गयी।.....संक्षेप में दार्शनिकों ने जो सुंदर आशाएं बंधा दी थी, उनकी तुलना में 'विवेक की विजय' द्वारा उत्पन्न सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ घोर निराशा जनक थीं, और इन आशाओं का मखौल भर थीं। कमी केवल उन लोगों की थी जो इस निराशा को वाणी दे सकें। अठारहवीं शताब्दी का अंत होते–होते ऐसे लोग भी आ गए।''[iii] ये लोग आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकार ही थे जिनकी संवेदनशील कलम ने पूंजीपति बुर्जुआ वर्ग की असलियत का पर्दाफाश किया। अन्र्स्ट फिशर स्वच्छंदतावाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद का आरंभिक दौर मानते हैं। फिशर के मुताबिक पूंजीवादी समाज का स्वच्छंदतावादी विरोध उत्तरोत्तर समाज की आलोचना में बदल गया। फिशर के मत में– ''एकाकी 'मैं' के स्वच्छंदतावादी विद्रोह से, पूँजीवादी मूल्यों के अभिजातवर्गीय तथा निम्नवर्गीय अस्वीकार के मिश्रण से, आलोचनात्मक यथार्थवाद का जन्म हुआ।''[iv] शिवकुमार मिश्र ने भी अपने ग्रंथ 'यथार्थवाद' में पूंजीवाद के इस कलाविरोधी रुख को आलोचनात्मक यथार्थवाद

के विकास में सहायक मान कर लिखा है– ''.....किंतु सन् 1848 ई0 तक आते–आते पूंजीवादी सभ्यता के दावों का खोखलापन बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका था, और लोग उसके चरित्र से उसके शोषक चरित्र से परिचित होने लगे थे। यह एक जबर्दस्त मोहभंग था जिसके सबसे निर्मम शिकार ईमानदार तथा संवेदनशील लेखक ही बने।''[v] 1917 की रूसी समाजवादी क्रांति का भी पूंजीवाद की चूलें हिलाने में तथा यथार्थवाद को आगे बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ रहा है। राल्फ फॉक्स ने भी आलोचनात्मक यथार्थवाद के उदय के पीछे कलाकारों का 'पूंजीवाद से मोहभंग होना' एक प्रमुख कारण के रूप में स्वीकार किया है– ''उन्नीसवीं शताब्दी के सृजनात्मक कलाकारों को पूंजी के केन्द्रीकरण से उत्पन्न मानव–संबंधों का नया, अपनत्वहीन रूप बुरी तरह अखरता था। इतनी ही बुरी तरह वह यह अनुभव करते थे कि पूंजीवादी बाजार ने उनकी कृतियों को भी एक ही तराजू से तोली जाने वाली वस्तु बना दिया है।.....उन्नीसवीं शताब्दी का उपन्यासकार नये बुर्जुआ वर्ग के प्रति बनैली घृणा के साथ इस सीधे समरूपीकरण का विरोध करता था।''[vi] इस प्रकार यथार्थवादी आंदोलन के प्रमुख चिंतकों की नजर में फ्रांसीसी राज्य क्रांति तथा पूंजीवादी व्यवस्था का उदय आलोचनात्मक यथार्थवाद के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रेरणादायी घटना है। पूंजीवाद के उदय से मध्यवर्ग का जन्म, मध्यवर्ग के माध्यम से उपन्यास का विकास तथा उपन्यास की कोख से यथार्थवाद की निष्पत्ति और फिर उसकी एक प्रमुख प्रवृत्ति तथा शैली के रूप में आलोचनात्मक यथार्थवाद का विकास, इसके इतिहास की एक अति संक्षिप्त रूपरेखा है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रमुख विचारक

विचारधारा और साहित्य–दृष्टि के निर्माण में उसके प्रवर्तक का स्थान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस दृष्टि से आलोचनात्मक यथार्थवाद का प्रवर्त्तक किसे स्वीकार किया जाये, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। आदिम युग में गुफाचित्रों के माध्यम से मनुष्य ने अपने जिस यथार्थबोध का परिचय दिया था, वह पहले दर्शन तथा बाद में कला और साहित्य में प्रवेश करता है। दर्शन के क्षेत्र में अठारहवीं शताब्दी में देकार्त, लॉक और बेकन जैसे चिंतकों ने इसके लिए जमीन तैयार करनी शुरू कर दी थी। बेकन का नाम इस दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। एंगेल्स के मुताबिक संसार की भौतिक सत्ता को प्रतिपादित करने वाला वह पहला अंग्रेज दार्शनिक था। अलेक्जेंडर हर्जन ने उसका महत्त्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया है– ''बेकन ने अंधसूत्रवाद की जड़ें हिला दी, पुराने अधिभूतवाद के लिए अब इज्जत के साथ सर उठाना संभव न रहा। बेकन के बाद हर कहीं, ज्ञान के सभी क्षेत्रों में वितंडावादियों के इंद्रिय बोधातीत सिद्धान्तों के विरूद्ध प्रतिक्रिया की बाढ़ सी उमड़ पड़ी।''[vii] दर्शन के बाद कला में यथार्थ–चित्रण की प्रतिष्ठा का श्रेय फ्रांसीसी चित्रकार कोर्बे को दिया जा सकता है, जिसने 1855 ई. में सर्वप्रथम 'रियलिज्म' शब्द का प्रयोग किया था। अर्न्स्ट फिशर ने कोर्बे की यथार्थवादी कला की प्रशंसा में कहा था– ''सरकारी प्रतिष्ठा से अपना नाता तोड़ लेने वाला कोर्बे, जिसने अपनी रंगों की कूची को खुरपी की तरह चलाकर किसानों और मजदूरों के, प्राकृतिक दृश्यों के, फलों और फूलों के चित्र बड़े जीवन्त प्रकृतवादी ढंग से बनाए थे, स्वयं कोई प्रभाववादी कलाकार नहीं था; लेकिन वह संग्रहालय की दीवारों को लांघकर प्रकृति के बीच, जनगण के बीच, प्रकाश और रंगों की ताजगी के बीच जा पहुँचा और प्रभाववादियों के लिए एक उदाहरण बन गया।''[viii] दर्शन और कला की उपरोक्त यथार्थवादी प्रेरणाएं साहित्य के लिए भी प्रेरणास्रोत बनी।

आलोचनात्मक यथार्थवाद की आरंभिक झलकियाँ उपन्यास के आदि संस्थापक डीफो, रिचर्डसन, तथा फील्डिंग के उपन्यासों में साफ देखी जा सकती है, रेबीले और सर्वेन्टीज के उपन्यास भी इसके अच्छे उदाहरण हैं। किंतु जहाँ तक आलोचनात्मक यथार्थवाद के साहित्य के प्रवर्तक का प्रश्न है, इसका उत्तर पुश्किन और बालजाक के साहित्य में खोजा जा सकता है। रूसी आलोचक बोरिस सुखोव ने 'हिस्ट्री ऑफ रियलिज्म' में साहित्य को स्वच्छंदतावाद से मुक्त करने तथा आलोचनात्मक यथार्थवाद की नींव डालने का श्रेय यूरोपीय उपन्यासकार पुश्किन को दिया है। सुखोव ने पुश्किन को प्रवर्तक के रूप में स्वीकार करते हुए वाल्टर स्काट के अन्यतम योगदान का भी स्मरण किया है– ''पुश्किन तथा वाल्टर स्काट का कृतित्व इस तथ्य को भी प्रमाणित करता है कि स्वच्छंदतावाद की एकांगी जीवन–दृष्टि से अपने को क्रमशः मुक्त करते हुए किस प्रकार एक सर्वथा नये प्रकार के यथार्थवाद का जन्म हुआ और युग जीवन के कतिपय ऐसे क्षणों को पहली बार स्पर्श किया गया

जिन तक न तो स्वच्छंदतावादियों की ही दृष्टि पहुँच सकी थी और न पूर्ववर्ती यथार्थवादियों की।''[ix] स्वच्छंदतावाद की छाया से बाहर आता यह 'नये प्रकार का यथार्थवाद' आलोचनात्मक यथार्थवाद ही था। कुछ विद्वान आलोचकों ने वाल्टर स्काट को भी इसके संस्थापकों में शुमार किया है। 'आलोचना' में संकलित एक लेख में रामकृपाल पांडेय स्काट के बारे में लिखते हैं– ''19वीं शती में वाल्टर स्काट ने यथार्थवाद को और आगे बढ़ाया तथा उन्नत किया। स्काट के ऐतिहासिक उपन्यासों में कारण–कार्य की सुसंबद्ध शृंखला के रूप में सामाजिक जीवन चित्रित हुआ हैं। यहीं से आलोचनात्मक यथार्थवाद की शुरूआत होती है।''[x] कई यूरोपीय विद्वानों ने स्तान्धाल को कालक्रम की दृष्टि से बालजाक का पूर्ववर्ती मानते हुए 19वीं शती के आलोचनात्मक यथार्थवाद का प्रवर्तक माना है, हालांकि यह मत इतना लोकप्रिय तथा तर्कसंगत नहीं है। एंगेल्स, राल्फ फॉक्स और लुकाच जैसे विश्वस्तरीय मार्क्सवादी आलोचकों ने फ्रेंच उपन्यासकार बालजाक (1799–1850) के उपन्यासों में बुर्जुआ जीवन की घनघोर निर्मम आलोचना तथा अन्य दूसरी संबद्ध प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उसे ही आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य का प्रवर्तक एवं सबसे बड़ा रचनाकार स्वीकार किया है। इसका सबसे उत्कृष्ट प्रमाण लुकाच द्वारा आलोचनात्मक यथार्थवाद के सिद्धांत–पक्ष के निर्माण में बालजाक के उपन्यासों की आधार–ग्रंथों के रूप में स्वीकृति भी है।

उपरोक्त विस्तृत विवेचन के बाद बेकन को दर्शन में तथा कोर्बे को कला में यथार्थवाद का पुरस्कर्ता माना जा सकता है। जहाँ तक साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रवर्तक का सवाल है, स्तांधाल की रचनाएं मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद से ज्यादा मेल खाती हैं, आलोचनात्मक यथार्थवाद से नहीं। स्तांधाल को मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवादी साहित्य का पुरस्कर्ता माना जा सकता है। कालक्रम में पूर्ववर्ती होना ज्यादा मायने नहीं रखता, सवाल प्रवृत्ति के प्रतिनिधि रूप का तथा समग्रता में उसके समावेश का है। रही बात पुश्किन एवं वाल्टर स्काट की तो उनकी महत्वपूर्ण रचनाएं 1830 के बाद ('दुवोत्सकी' 1833, 'ए कैप्टेन्स डॉटर', 1836) प्रकाश में आई है जिनमें आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य का आरंभिक बोध ही है, वे समग्रता में उसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। बालजाक 19वीं सदी के दूसरे दशक से ही अपनी प्रतिनिधि रचनाएं देने लगे थे। 1816 से 1848 तक बालजाक ने अपने रचनाकर्म का ऐतिहासिक अवदान हमें दिया जिसमें तत्कालीन फ्रांसीसी समाज का साफ और सच्चा चित्र, बुर्जुआ जीवन की निर्मम आलोचना, अंतर्विरोधों तथा असंगतियों से जूझते समस्याधर्मी चरित्र एवं आलोचनात्मक यथार्थवाद की अन्य वस्तुगत एवं रूपगत विशेषताएं अपने प्रतिनिधि रूप में दिखाई देती हैं, जिसके आधार पर हम बालजाक को निस्संकोच आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य का प्रवर्तक या पुरस्कर्ता मान सकते हैं। उनकी तुलना हिंदी में प्रेमचंद की स्थिति से की जा सकती है। डीफो, रिचर्डसन फील्डिंग से आरंभ होने वाली आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य की विकासयात्रा बालजाक, स्तांधाल, टाल्सटाय और टॉमस मान में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है। इस सृजन यात्रा में पुश्किन, वाल्टर स्काट, चार्ल्स डिकेन्स, थैकरे, ब्रोण्टे सिस्टर्स, जार्ज इलियट, तुर्गनेव, टॉमस हार्डी, आर.एल. स्टीवेन्शन, गोन्कोर्ट बंधु, जार्ज मूर, गोगोल, फ्लोबर्ट आदि के उपन्यास 'मील के पत्थर' माने जा सकते हैं।

1920 में सात अमरीकन दार्शनिकों द्वारा एक दल का गठन इसके इतिहास में बड़ी उल्लेखनीय घटना है (जिसमें शामिल हैं– सी.ए. स्ट्रांग, जी. सन्टायाना, लव ज्वाय, प्रोड्रेक, प्रेट रोगर्स तथा सेलर्स) जिसके संयुक्त प्रयास के अंतर्गत 'आलोचनात्मक यथार्थवाद (Critical Realism) पर ग्रंथ का प्रकाशन किया गया है।[xi] उन्होंने इसे 'वैज्ञानिक यथार्थवाद' के रूप में अपनी स्वीकृति भी दी है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ

जॉर्ज लुकाच और अन्य प्रतिनिधि आलोचकों ने महान रचनाकारों बालजाक, टॉल्सटाय, स्तान्धाल एवं टॉमस मान आदि के समुचित अध्ययन के बाद आलोचनात्मक यथार्थवाद का जो प्रतिमान खड़ा किया है वह आलोचना की विशिष्ट दृष्टि है । इस प्रतिमान के अनुसार यथार्थवादी रचना में समाज का अध्ययन और चित्रण ही पर्याप्त नहीं है वरन उसका विश्लेषण (एनालिसिस) भी होना चाहिए। महान रचनाएं जीवन के अच्छे–बुरे दोनों पक्षों को समान भाव से चित्रित करती है। ऐसा साहित्य समझौता नहीं करता बल्कि विसंगतियों के खिलाफ

प्रतिरोध की आवाज बन जाता है। एक यथार्थवादी कृति अपनी जनता से बहुत गहरे जुड़ी होती है जैसे कि टालस्टाय और प्रेमचंद की रचनाएं। मार्क्सवाद से प्रभावित ऐसे लेखक गरीब, सर्वहारा और दलित वर्ग के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। यथार्थवादी रचनाकार जन–मन की सबसे तीव्र, महत्वपूर्ण और आधारभूत समस्या को अपने सृजन में स्थान देता है परंतु वह समस्या का आदर्शवादी काल्पनिक हल या समाधान नहीं देता और न हीं हृदय परिवर्तन करवाता है । इनकी रचनाओं में पूंजीपति वर्ग के प्रति गहरी नफरत का भाव देखा जाता है । जॉर्ज लुकाच के मुताबिक महान लेखक के पास वस्तुपरक, निर्मम एवं तर्क युक्त आलोचनात्मक दृष्टि होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि इसे नकारात्मक नजरिया कहने से बचना होगा । महान रचनाएं व्यक्ति और समाज के अंतर्विरोधों को पहचान कर उनका सटीक उद्घाटन और विश्लेषण करती हैं । यथार्थवादी रचनाकार को विचारधारा के प्रचार का सीधा वाहक नहीं बनना चाहिए, लेखकीय दृष्टि पात्रों और परिस्थितियों से व्यंजित हो तो ही श्रेयस्कर है। स्वच्छंदतावाद का विरोध, प्रतिनिधि परिस्थितियों और पात्रों का चित्रण, यूटोपिया का परित्याग, प्रतिरोध की भावना एवं लोक जीवन से जुड़े भाषा, प्रतीकों और बिम्बों का सृजन आदि विशेषताएं आलोचनात्मक यथार्थवाद की दृष्टि की अन्य मुख्य कसौटियां है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद का पतन और उसकी सीमाएँ

यथार्थवादी दृष्टिकोण विश्व को गुण एवं दोष तथा अंतर्विरोधों का पुंज मानकर चलता है, तदनुरूप आलोचनात्मक यथार्थवाद भी चिंतन की सीमाओं से मुक्त नहीं है। 19वीं शती में बालजाक, टॉल्सटाय और टामसमान के उपन्यासों में जो प्रवृत्ति बुर्जुआ यथार्थवाद की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति बनकर अपने चरम पर पहुँची थी, फ्लाबेयर लगभग उसके अंतिम प्रमुख रचनाकार सिद्ध हुए जिसके बाद आलोचनात्मक यथार्थवाद आगे नहीं बढ़ पाया। इसके पतन के कारणों की खोज की जाये तो तत्कालीन परिस्थितियाँ तथा चिंतन की खामियाँ दोनों ही नजर आती है।

20वीं सदी में आलोचनात्मक यथार्थवाद को साहित्य में बालजाक के मुकाबले की उत्कृष्ट प्रतिभाऐं नहीं मिल पायी, फ़्लाबेयर जैसे रचनाकार दिल से ईमानदार होते हुए भी खुद अपने सिद्धान्तों पर खरे नहीं उतरे। आलोचनात्मक यथार्थवाद एक बार अपने उत्कृष्ट रूप में आने के बाद प्रकृतिवादी प्रवृत्तियों का शिकार हो गया तथा जीवन के प्रकृतवादी, एकांगी, वीभत्स एवं नकारात्मक जैविक चित्रण के रास्ते पर भटक गया। प्रकृतिवाद के बाद समाजवादी यथार्थवाद का उद्भव भी उसके पतन का एक उल्लेखनीय कारण है। समाजवादी यथार्थ आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमाओं, कमजोरियों तथा खामियों से सर्वथा मुक्त होकर सामने आया, जिसे आलोचनात्मक यथार्थवाद के पुरस्कर्ता स्वयं लुकाच ने उसके भविष्य के रूप में मान्यता दी। समाजवादी यथार्थवाद के विकल्प रूप में आने के बाद आलोचनात्मक यथार्थवाद की तूफानी गति स्वयं ही ठंडी पड़ गयी। परवर्ती रचनाकार टॉल्स्टाय की तरह गहरी जन संपृक्ति से अनुप्राणित भी नहीं थे। टामसमान 20वीं सदी के 'आखरी महत आलोचनात्मक यथार्थवादी' सिद्ध हुए। इन सबके पीछे कुछ तात्कालिक घटनाऐं भी जिम्मेदार हैं। फ्रांस से हटकर यथार्थवाद का केन्द्र रूस के बन जाने से समाजवादी साहित्य का ही विकास हो सका, जहाँ की देशकाल एवं परिस्थितियों में दिन–रात का अंतर था। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद फ्रांस में 'नया उपन्यास' आंदोलन द्वारा यथार्थवाद का विरोध, फ्रांसीसी संरचनावाद तथा 'अमरीकी नयी–समीक्षा' के आने से आलोचनात्मक यथार्थवाद की रचना प्रक्रिया स्वतः ही कमजोर पड़ गयी। अजनबीपन, एकान्तिकता तथा संत्रास को प्रस्तुत करने वाली आधुनिकतावादी प्रवृत्ति ने भी आलोचनात्मक यथार्थवाद से लोगों का ध्यान हटाया।

उक्त प्रतिकूल परिस्थितियों के अलावा अपने चिंतन की आधारभूत खामियाँ भी आलोचनात्मक यथार्थवाद के पतन का अहम कारण थीं। इस प्रवृत्ति के मुख्य सिद्धांतकार जार्ज लुकाच का चिंतन स्वयं में गुरुत्वपूर्ण होते हुए भी चिंतन की जटिलता के कारण वैचारिक भटकाव का शिकार तथा अंतर्विरोधों से ग्रस्त दिखाई पड़ता है, जो सैद्धांतिक ढाँचे को कमजोर करता है। अपने स्थापित सिद्धांतों के प्रति ही विरोधाभास आलोचनात्मक यथार्थवादी चिंतन को अंतर्विरोधी प्रमाणित करता है। स्वच्छंदतावाद का विरोधी होने पर भी रोमानी किस्म की प्रतिक्रियाओं से निहित होना, लेखकीय विचारधारा और रचना के यथार्थ में परस्पर विरोध को अनिवार्य बताना और उसे यथार्थ की विजय समझना तथा सुस्पष्ट इतिहास चेतना का बोध नहीं होना ऐसी खामियाँ है, जो

आलोचनात्मक यथार्थवादी विचारधारा को कमजोर करती है। असहमति, विरोध, व्यंग्य तथा प्रतिरोध चेतना को महत्वपूर्ण मानते हुए कई बार 'नेगेटिव अप्रोच' का शिकार हो जाने से ये रचनाकार न तो कुछ उल्लेखनीय की प्रतिष्ठा कर पाये और न ही भविष्य के प्रति रचनात्मक कल्पना के साक्षी बन सके। समाधानपरकता को आदर्शवादी समझने के कारण पूँजीवादी समस्या को चित्रित तो किया पर उसे जस का तस छोड़ दिया। सामाजिक विकास के प्रति वैज्ञानिक समझ का अभाव तथा भविष्य के प्रति पॉजीटिव सोच का न होना ऐसी आधारभूत कमजोरियाँ हैं जिनक कारण आलोचनात्मक यथार्थवाद की जगह समाजवादी यथार्थवाद ने ले ली।

उपरोक्त अंतर्विरोधों तथा वैचारिक खामियों के बावजूद उसका महान् यथार्थवादी साहित्य, समग्रता की धारणा, प्रातिनिधिकता, बुर्जुआ–विरोध, सामाजिक विश्लेषण, मानवतावाद, गहरी जन संपृक्ति तथा वस्तु और शिल्प की एकता ऐसे रचनात्मक पहलू हैं जो आलोचनात्मक यथार्थवाद के सैद्धांतिक तथा कलात्मक मूल्य को उन्नत करने वाले ही नहीं बल्कि समूची कला और साहित्य के लिए प्रासंगिक हैं। भले ही आज आलोचनात्मक यथार्थवाद हमारे लिए डेढ़ सौ साल पुरानी चीज हो गयी हो पर भूमण्डलीकरण–वैश्वीकरण के वर्तमान परिदृश्य में पूँजीवाद का वर्चस्व और उसके संभावित खतरे आज पूर्वापेक्षा अधिक है, दूसरी ओर साहित्य एवं कलाओं में आधुनिकतावाद भी सिर उठा रहा है, ऐसे में आलोचनात्मक यथार्थवाद की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के महत्व और प्रासंगिकता के संदर्भ में जार्ज लुकाच की यह टिप्पणी उद्धृत करने योग्य है–

''समूची दुनिया की निगाहें आज एक ऐसे साहित्य की प्रतीक्षा में लगी है जो एक शहतीर की भाँति हमारे अपने समय के उलझावों से भरे जंगल के भीतर तक बिंधता चला जाये। महान् यथार्थवादी साहित्य ही यह भूमिका निभा सकता है। वही राष्ट्रों के प्रजातांत्रिक पुनर्जन्म की अगुवाई भी कर सकता है।''[xii]

निष्कर्ष

आलोचनात्मक यथार्थवाद मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में 19वीं शताब्दी की ऐतिहासिक उपलब्धि है जिसका उद्भव एवं विकास प्रकृतिवाद, रोमांटिसिज्म एवं आदर्शवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसके पीछे अनेक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां उत्तरदायी रही हैं। महान उपन्यासकार टॉल्सटाय और बालजाक आदि का विशद अध्ययन कर जॉर्ज लुकाच ने इसे आलोचना अथवा समीक्षा के नए प्रतिमान के रूप में विकसित किया है। उनकी दृष्टि में वह लेखक या रचना सफल और सम्मान के योग्य है जिसमें यथार्थ की समग्र, वस्तुपरक, निष्पक्ष भय एवं पक्षपात से रहित कलात्मक अभिव्यक्ति होती है तथा जो जनता से गहराई से जुड़कर उसकी प्रतिनिधि समस्याओं को पूरे प्रतिरोध के साथ उठाती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

i अन्र्स्ट फिशर : कला की जरूरत, पृ0 116

ii शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, पृ0 100–101

iii फ्रेडरिक एंगेल्स : संकलित रचनाएं, भाग– 3, पृ0 67–69 (स्रोत– शिवकुमार मिश्र : दर्शन, साहित्य और समाज, पृ0 29–30)

iv अन्र्स्ट फिशर : कला की जरूरत, पृ0 112

v शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, पृ0 102

vi राल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोक जीवन, पृ0 37–38

vii अलेक्जेंडर हर्जनः दर्शन, साहित्य और आलोचना, पृ0 127 (स्रोत–शिवकुमार मिश्रः दर्शन, साहित्य और समाज, पृ0 27)

viii अन्र्स्ट फिशर : कला की जरूरत, पृ0 79

ix बोरिस सुखोव : ए हिस्ट्री ऑफ रियलिज्म, पृ0 101 (स्रोत– शिवकुमार मिश्र : दर्शन, साहित्य और समाज, पृ0 31)

x रामकृपाल पांडेय : साहित्य में यथार्थवाद, आलोचना, अक्टू.–दिस., 1976, पृ0 63

xi डॉ0 परशुराम शुक्ल 'विरही' : आधुनिक हिंदी काव्य में यथार्थवाद, पृ0 34–36

xii जार्ज लुकाच : स्टडीज इन यूरो. रियलिज्म, पृ. 19 (स्रोत– शिवकुमार मिश्र : दर्शन, साहित्य और समाज, पृ0 46)

❖◆❖